

## जो भाव धर्म नहीं, वही अधर्म है

देखो ! सातवें नरक का नारकी, जिसके प्रतिकूल संयोगों की, दुखों की क्या कथा कहें ? जन्म से ही सोलह रोग - श्वास, दमा, कैंसर, शीत, भूख, प्यास इत्यादि की भारी पीड़ा-वेदना होती है। वहाँ की शीत का एक कण भी मनुष्य लोक में आ जावे तो उसके प्रभाव से योजन तक के मनुष्य एवं पशु-पक्षी मर जावें। तैंतीस-तैंतीस सागर पर्यंत अनाज का दाना नहीं मिलता, पानी की बूँद न मिले और भूख ऐसी कि तीन लोक बराबर अन्न खा जावें तो भी न मिटे। ऐसी भयंकर पीड़ा के संयोग में रहकर भी कोई-कोई नारकी जीव आत्मभान प्रकट करके सम्यग्दर्शन प्रकट कर लेते हैं। भाई ! शरीर निरोग हो वा बाह्य संयोग अनुकूल हों तो भी धर्म साधन हो सके और अनुकूल साधनों के द्वारा ही धर्म साधन हो सकेगा - ऐसी मान्यता सर्वथा मिथ्या है।

अहा ! ऐसे पीड़ाकारक संयोगों में जाकर अनेक बार तैंतीस-तैंतीस सागर तक नारकीय दुख सहे तथा अनन्त बार देव भी हुआ। बापू ! यह सब अज्ञान का फल है, ज्ञान का फल तो वीतरागी शान्ति और आनन्द है। ये सभी अनुकूल व प्रतिकूल संयोग शुभाशुभ भावरूप अज्ञान के फल हैं; इसलिये आचार्य कहते हैं कि कर्म का हेतु एक अज्ञान ही है। शुभ या अशुभ जो कर्म बंधन होता है, उनका कारण एकमात्र अज्ञान है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने पुरुषार्थसिद्धयुपाय में कहा है कि समकिति संतों को जो शुभभावों से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है, वह भाव भी अपराध है। यहाँ उसे भी अज्ञान कहा है; क्यों कि उसमें ज्ञान का अंश नहीं है, जिसमें ज्ञान का अंश नहीं है, वह भी अज्ञान कहा जाता है।

यहाँ अज्ञान का अर्थ मिथ्याज्ञान नहीं है; बल्कि इस शुभराग में चैतन्यप्रकाश के परिपूर्ण पुंज भगवान् आत्मा के चैतन्यप्रकाश की एक भी किरण नहीं है; इसलिये अज्ञान कहा है। भाई ! यह अज्ञानमय शुभराग स्वयं मिथ्यात्व नहीं है; परन्तु इससे धर्म होता है - यह मान्यता मिथ्यात्व है। इसप्रकार अज्ञान व मिथ्यात्व में अन्तर है।

**प्रश्न** - भाव पाहुड में सम्यग्दृष्टि को जिसभाव से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है - ऐसी धर्ममय सोलह कारण भावना भाने का कथन आता है, उस कथन का क्या अभिप्राय है ?

**उत्तर** - हाँ, यह सत्य है; परन्तु वह तो वहाँ व्यवहार दर्शाया है अर्थात् सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीवों को समय-समय पर जो सोलह कारण भावना भानेरूप भाव होता है, उसका यथास्थान ज्ञान कराया है; तथापि वह सभी व्यवहार राग अज्ञानभाव है, बंध का कारण है, अधर्म है।

यद्यपि यह बात कर्ण कटु है, सुनने में थोड़ी कड़वी लगती है; तथापि क्या करें ? भाई ! जिस भाव से बंध होता है, वह भाव धर्म नहीं है और जो भाव धर्म नहीं है, वही अधर्म है।

- प्रवचनरत्नाकर भाग-5, पृष्ठ -28-29

## वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।  
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 20

237

अंक : 9

### अष्टपाहुड पद्यानुवाद

#### शीलपाहुड

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्लु

अरे! जिसमें अतीन्द्रिय सुख ज्ञान का भण्डार है ।  
वह मोक्ष केवल शील से हो प्राप्त - यह जिनवर कहें ॥३३॥  
ये ज्ञान दर्शन वीर्य तप सम्यक्त्व पंचाचार मिल ।  
जिम आग ईंधन जलावे तैसे जलावें कर्म को ॥३४॥  
जो जितेन्द्रिय धीर विषयविरक्त तपसी शीलयुत ।  
वे अष्ट कर्मों से रहित हो सिद्धगति को प्राप्त हों ॥३५॥  
जिस श्रमण का यह जन्म तरु सर्वांग सुन्दर शीलयुत ।  
उस महात्मन् श्रमण का यश जगत में है फैलता ॥३६॥  
ज्ञानध्यान रु योगदर्शन शक्ति के अनुसार हैं ।  
पर रत्नत्रय की प्राप्ति तो सम्यक्त्व से ही जानना ॥३७॥  
जो शील से सम्पन्न विषय विरक्त एवं धीर हैं ।  
वे जिनवचन के सारग्राही सिद्ध सुख को प्राप्त हों ॥३८॥  
सुख-दुख विवर्जित शुद्धमन अर कर्मरज से रहित जो ।  
वह क्षीणकर्मा गुणमयी प्रकटित हुई आराधना ॥३९॥  
विषय से वैराग्य अर्हतभक्ति सम्यक्दर्श से ।  
अर शील से संयुक्त ही हो ज्ञान की आराधना ॥४०॥

और तू तो जीव है, शरीर रूपी और तू अरूपी है, शरीर मूर्त और तू अमूर्त है, शरीर उपद्रव का घर है और तू आनन्द का धाम है। एक इच्छा मिटती है, वहाँ दूसरी उत्पन्न होती है। शरीर के एक के पीछे एक उपद्रव चालू ही रहते हैं; परन्तु शरीर का रागी जीव उसकी सेवा ही करता रहता है।

सर्वज्ञ वीतरागदेव कहते हैं कि हे भाई ! तू हमारी जाति का है। 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय।' कोई आत्मा बनिया, ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र नहीं है। सभी आत्मार्थे सिद्ध की जाति के हैं; परन्तु स्वयं ने स्वयं की रुचि छोड़कर स्वयं में श्रद्धा-ज्ञान-लीनता नहीं की और शरीरादि में रुचि अर्थात् प्रेम किया। इसकारण वह दुःखी हो रहा है। उससे भगवान परमात्मा कहते हैं कि हे भाई ! तुझमें तो अतीन्द्रिय आनन्द का फुहारा पड़ा हुआ है। तू उसका भरोसा नहीं करता। मूर्ख ! तू जड़ के भरोसे अपना जीवन खो रहा है। तू भोला होकर भूल रहा है; परन्तु तेरा चैतन्य जीवन अंदर जुदा ही रहता है, तू उसका तो थोड़ा ख्याल कर ! भरोसा कर ! प्रतीति ला !

मूर्ख जीव शरीर काला होता है तो कहता है कि मैं काला। कोई रूपवाला (सुन्दर) हो तो मैं रूपवान और रोगी हो तो मैं रोगी - ऐसा मानता है। 24 घण्टे दिन-रात शरीर की संभाल में समय बिताता रहता है; परन्तु ज्ञानी कहता है कि हे भाई ! यह शरीर तो चमड़ा में लपेटा हुआ हड्डी और मांस है - ये तुम्हारा स्वरूप नहीं है।

सौ इन्द्रों की हाजरी में भगवान सर्वज्ञदेव समवशरण में यह बात दिव्यध्वनि में समझाते हैं। इस विघ्नरूप शरीर में तुझे रुचि कैसे होती है? नाशवान चीज का भरोसा कैसे आता है? शरीर में रुचि है, यह तेरी मूढ़ता है। 8 वर्ष की लड़की हो, सम्यग्दर्शन प्रगट किया हो, बाद में भले ही लग्न करे; परन्तु उसको शरीर और शरीर के भोगों में सुख भासित नहीं होता। भोग भोगते हुए उसे उन भोगों के प्रति अंतर में उदासीनता रहती है, रुचि नहीं रहती। वह जानती है कि मैं तो आत्मा हूँ, मेरा सुख मेरे में है। मेरे आत्मीक सुख के आगे इस जड़ सुख की कोई कीमत नहीं है।

चार सेर (4 किलो) घी पिलाई हुई मिठाई खाकर अज्ञानी सुख मानता है; मिठाई खाकर मुख खोलकर सीसे में देखे तो स्वयं को ग्लानि होगी। इसकी जीव को परवाह कहाँ है? जड़ से प्रेम करके वृथा ही समय गवाँता है। स्वयं के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद चखने की परवाह नहीं करता है।

(क्रमशः)

इष्टोपदेश प्रवचन

## भोगोपभोगों को कौन समझदार चाहेगा

पूज्यपाद आचार्य देवन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 17वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है -

आरम्भे तापकान्प्राप्तावऽतृप्तिप्रतिपादकान् ।

अन्ते सुदुस्त्यजान्, कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥17॥

प्रारंभ में संताप के कारण और प्राप्त होने पर अतृप्ति के करनेवाले तथा अन्त में जो बड़ी मुश्किलों से भी छोड़े नहीं जा सकते - ऐसे भोगोपभोगों को कौन विद्वान-समझदार आसक्ति से सेवन करेगा ?

## (गतांक से आगे)

अहो ! एकस्वरूप में विराजमान महाप्रभु की दृष्टि के बिना मोक्षमार्ग की शुरूआत नहीं होती। सम्यग्दर्शन होने के तुरन्त बाद भोगों से नहीं छूटते, अस्थिरता का राग रहता है; लेकिन वह भी छोड़ने लायक है। पुण्य-पाप के परिणामों में रुकने से शांति लुटती है, शक्ति खर्च होती है - ऐसा विवेक ज्ञानी को वर्तता है। आत्मा को धर्म करते समय पुण्य भी होता है, उससे बंध भी होता है, उसके फल में स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है। जहाँ 100 कलश अनाज उत्पन्न होता है, वहाँ उससे भी अधिक भूसा भी मिल जाता है; उसीप्रकार ज्ञानी धर्म के फल के साथ होनेवाले पुण्य-पाप के फल को बराबर जानता है। ज्ञानी स्वयं की दशा को जानता है कि मुझे धर्म की शुरूआत हुई; परन्तु मेरी अवस्था के प्रमाण में मैं इसे छोड़ नहीं सकता। पूर्ण वीतरागता के अभाव में किंचित् रागवश भोग भोगने का भाव आता है, इसप्रकार ज्ञानी स्वयं की दशा जानता है।

मेरा स्वभाव मेरा मित्र है और विभाव शत्रु है - ऐसा ज्ञानी मानता है। देश कैसा है? काल कैसा है? इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? ऐसा विचार ज्ञानी को निरन्तर वर्तता है। अज्ञानी मूर्ख स्वयं की क्रिया को देखता नहीं, उसके फल को जानता नहीं। वह मोक्षमार्ग के क्रम को व स्वभाव के साधन को नहीं जानता तथा देश-काल की स्थिति का विचार भी नहीं करता; पर को स्वयं का शत्रु मानता है। मेरा स्वभाव मेरा मित्र और विभाव शत्रु है - ऐसा

ज्ञान अज्ञानी को नहीं है।

भोग भोगने में बहुत दुःख है तथा भोग भोगते-भोगते तृष्णा घटने के बदले बढ़ती जाती है, पर अज्ञानी को भोग छोड़ना अच्छा नहीं लगता। लोलुपता अंदर रहती है। लोग कहते हैं कि - 'आना तो पोसाता है, परन्तु जाना जचता नहीं है' वैसे ही भोग-भोगना जमता है; परन्तु छोड़ना नहीं जमता। आचार्यदेव कहते हैं कि इन कष्टदायक भोगों को कौन बुद्धिमान् भोगे? आत्मा के आनन्द को छोड़कर भोगों में रुचि कौन करे?

देखो ! भाई, यह धर्म की रीति कही है। शरीर, वाणी और मन की क्रिया धर्म नहीं, अंदर में पुण्य-पाप के भाव धर्म नहीं; अंतर में शुद्ध चैतन्य प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता ही धर्म है - ऐसा मुक्ति का मार्ग ही धर्मात्मा को अपनाने योग्य है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा मुक्ति का मार्ग नहीं है।

**भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।**

**स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥१८॥**

यहाँ आचार्यदेव विशेष कहते हैं कि हे जीव ! तू इतने कष्टों को किसके लिये सहन करता है ? जिसके लिये तू इतना दुःख भोग रहा है, वह शरीर कैसा है, किसका बना है? उसका विचार कर ! यह शरीर तो पुद्गल के परमाणुओं का पिण्ड है, जुदी-जुदी जगह से आकर मिले हुए स्कंधरूप में बने हुए परमाणुओं का पिण्ड है। अरे अनेकबार ऐसे परमाणुओं के पिण्ड से मिलकर यह शरीर बना है। वह थोड़े समय रहकर नष्ट हो जाता है।

अरे ! प्रभु तू यह क्या कर रहा ? तू तो निरालम्बी पदार्थ है न ! तू तेरे में प्रेम कर ! क्षणिक संयोगी वस्तुओं के प्रेम में पड़ा है। अरे प्रभु ! तू तीन लोक का नाथ कण-कण का भिखारी होकर भ्रमण कर रहा है।

आचार्यदेव कहते हैं कि शरीर तीन प्रकार से अपवित्र है - एक तो शरीर की उत्पत्ति अपवित्र है, दूसरा रक्त और वीर्य से बना हुआ होने से अपवित्र है और तीसरा उसके संग से समस्त वस्तुयें भी अपवित्र हो जाती हैं। घी का बना हुआ मैसूर का लड्डू खाओ, दूसरे दिन विष्टा होकर निकलता है ; इसलिए शरीर को अपवित्रता की उत्पत्ति का साँचा कहा है। आचार्य कहते हैं कि तू स्वयं पवित्रता का पिण्ड है, उसमें एकाग्रता कर तो वर्तमान दशा पवित्र होगी व आगामी दशा भी स्वमेव पवित्र होगी तथा दूसरों को कहेगा तो तेरे निमित्त से दुनियां भी पवित्र बनेगी। प्रभु ! तू तीन लोक का नाथ है, तुझे इस शरीर का साथ अच्छा

क्यों लगता है - ऐसा कहकर आचार्य वैराग्य कराते हैं।

ये शरीर अनर्थ, उपद्रव, झंझट, विघ्न और विनाश से सहित है ; इसलिये उसके साथ भोग भोगने की इच्छा व्यर्थ है, दुःखकर है ; अतः परमपवित्र आत्मा को भोगने की इच्छा कर !

यहाँ इष्टोपदेश की 18 वीं गाथा चल रही है। इसमें सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकर परमात्मा जीव और पुद्गल की भिन्नता बताते हुए कहते हैं कि भाई ! तू स्वयं के शरीर से जुदा है, तब शरीर की क्रिया से तुझे धर्मलाभ कैसे होगा ? शरीर की क्रिया से जीव को थोड़ा भी लाभ नहीं है।

यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है; चमड़ी से लिपटा हुआ मांस, हाड़ और खून-पीप का पुतला है। यह तुम्हारी चीज नहीं है और तू उसकी रुचि करता है - ऐसा करने से आत्मा की रुचि टल जाती है। एकसाथ दो वस्तुओं की रुचि नहीं हो सकती; क्योंकि शरीर इतना अपवित्र और तू पवित्रता से युक्त है, दोनों का मेल कैसे हो सकता है? एक म्यान में दो तलवार नहीं समाती; वैसे ही पवित्र और अपवित्र दोनों पदार्थों में रुचि कैसे हो सकती है? प्रभु परमात्मा ने इस जीव को शुद्ध आनन्दकन्द पवित्रता की गठरी और पवित्रता का पिण्ड कहा है। ऐसे जीव से कहते हैं कि हे जीव ! तुम्हें इस अपवित्र जड़ मूर्ति की प्रीति कैसे होती है?

भाई ! यदि तुझे अपना हित करना हो तो इस जड़ शरीर आदि की रुचि छोड़ ! उससे तुझे हित होता है - ऐसी रुचि छोड़ ! मैं ही पवित्रता का पिण्ड हूँ - ऐसी दृढ़ श्रद्धा करके आत्मा की रुचि कर, तो तुझे शांति और सुख मिलेगा। शरीर तो इतना अपवित्र है कि जिस वस्तु का उसके साथ संबंध होता है, वह उसे भी क्षणभर में अपवित्र बना देता है। दाल, भात, सब्जी, रोटी आदि खाने पर सभी सुंदर वस्तुओं को पाँच-छः घंटे में विष्टा बना देता है।

शरीर तो विष्टा संचय करने का सांचा है। भाई ! यह मिट्टी है, जड़ है, यह तू नहीं, ये तुम्हारे में नहीं और तू इनमें नहीं। दोनों चीज जुदी है। ऐसा नहीं मानता हुआ शरीर को स्वयं का मानकर भोग का साधन मानकर उसमें रुचि करता है; इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। वही जीव शरीर से प्रेम करता है और आत्मा की रुचि छोड़ देता है - इसप्रकार लाभ छोड़कर नुकसान में ही पड़ जाता है। उसे ज्ञानी जीव समझाते हैं - हे भाई ! शरीर अजीव

और तू तो जीव है, शरीर रूपी और तू अरूपी है, शरीर मूर्त और तू अमूर्त है, शरीर उपद्रव का घर है और तू आनन्द का धाम है। एक इच्छा मिटती है, वहाँ दूसरी उत्पन्न होती है। शरीर के एक के पीछे एक उपद्रव चालू ही रहते हैं; परन्तु शरीर का रागी जीव उसकी सेवा ही करता रहता है।

सर्वज्ञ वीतरागदेव कहते हैं कि हे भाई ! तू हमारी जाति का है। 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय।' कोई आत्मा बनिया, ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र नहीं है। सभी आत्मार्थे सिद्ध की जाति के हैं; परन्तु स्वयं ने स्वयं की रुचि छोड़कर स्वयं में श्रद्धा-ज्ञान-लीनता नहीं की और शरीरादि में रुचि अर्थात् प्रेम किया। इसकारण वह दुःखी हो रहा है। उससे भगवान परमात्मा कहते हैं कि हे भाई ! तुझमें तो अतीन्द्रिय आनन्द का फुहारा पड़ा हुआ है। तू उसका भरोसा नहीं करता। मूर्ख ! तू जड़ के भरोसे अपना जीवन खो रहा है। तू भोला होकर भूल रहा है; परन्तु तेरा चैतन्य जीवन अंदर जुदा ही रहता है, तू उसका तो थोड़ा ख्याल कर ! भरोसा कर ! प्रतीति ला !

मूर्ख जीव शरीर काला होता है तो कहता है कि मैं काला। कोई रूपवाला (सुन्दर) हो तो मैं रूपवान और रोगी हो तो मैं रोगी - ऐसा मानता है। 24 घण्टे दिन-रात शरीर की संभाल में समय बिताता रहता है; परन्तु ज्ञानी कहता है कि हे भाई ! यह शरीर तो चमड़ा में लपेटा हुआ हड्डी और मांस है - ये तुम्हारा स्वरूप नहीं है।

सौ इन्द्रों की हाजरी में भगवान सर्वज्ञदेव समवशरण में यह बात दिव्यध्वनि में समझाते हैं। इस विघ्नरूप शरीर में तुझे रुचि कैसे होती है? नाशवान चीज का भरोसा कैसे आता है? शरीर में रुचि है, यह तेरी मूढ़ता है। 8 वर्ष की लड़की हो, सम्यग्दर्शन प्रगट किया हो, बाद में भले ही लग्न करे; परन्तु उसको शरीर और शरीर के भोगों में सुख भासित नहीं होता। भोग भोगते हुए उसे उन भोगों के प्रति अंतर में उदासीनता रहती है, रुचि नहीं रहती। वह जानती है कि मैं तो आत्मा हूँ, मेरा सुख मेरे में है। मेरे आत्मीक सुख के आगे इस जड़ सुख की कोई कीमत नहीं है।

चार सेर (4 किलो) घी पिलाई हुई मिठाई खाकर अज्ञानी सुख मानता है; मिठाई खाकर मुख खोलकर सीसे में देखे तो स्वयं को ग्लानि होगी। इसकी जीव को परवाह कहाँ है? जड़ से प्रेम करके वृथा ही समय गवाँता है। स्वयं के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद चखने की परवाह नहीं करता है।

(क्रमशः)

## ज्ञानस्वभाव की अद्भुत सामर्थ्य

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम प्रवचनसार की 30 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है-

**रयणमिह इन्द्रणीलं दुद्धज्जसियं जहा सभासाए।**

**अभिभूय तं पि दुद्धं वट्टदि तह णाणमट्टेसु ॥30 ॥**

जैसे इस जगत में दूध में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न अपनी प्रभा के द्वारा उस दूध में व्याप्त होकर वर्तता है; उसीप्रकार ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।

(गतांक से आगे ....)

ज्ञान पदार्थों में वर्तता है - ऐसा मूल गाथा में कहा है। आत्मा अपने ज्ञान साधन द्वारा ज्ञेयाकारों में व्याप्त होता है; किन्तु ज्ञेयाकारों (द्रव्य-गुण-पर्याय) के कारण पदार्थ हैं; इसलिये कारण में कार्य का उपचार करके ज्ञान और आत्मा पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तते हैं - ऐसा कहने में विरोध नहीं है।

जिसप्रकार दूध से भरे पात्र में पड़ा हुआ इन्द्रनीलरत्न सारे दूध को अपनी प्रभा से नीलवर्ण कर देता है; इसलिये व्यवहार से रत्न की प्रभा दूध में व्याप्त कही जाती है; उसीप्रकार आत्मा और ज्ञान दोनों, ज्ञेयाकारों में वर्तते हैं, यह उपचार है। ज्ञेयों से भरे हुये विश्व में रहा हुआ आत्मा समस्त लोकालोक को अपनी ज्ञानप्रभा द्वारा प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है; इसलिये व्यवहार से आत्मा का ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है; यद्यपि निश्चय से तो आत्मा और ज्ञान अपने असंख्य प्रदेशों में ही रहते हैं, ज्ञेयों में प्रविष्ट नहीं होते।

इस गाथा में ज्ञान पदार्थ में व्याप्त होता है, यह व्यवहार से कहा है। ज्ञान में ज्ञेय जानने में आते हैं; इसलिए ज्ञान ज्ञेय में प्रविष्ट होता है - ऐसा कहा जाता है। जब जीव वस्त्रादि का लक्ष्य करता है अर्थात् वस्त्रादि के भेद में अटकता है; तब ऐसा उपचार से कहा जाता है कि जीव का ज्ञान ज्ञेयों में प्रविष्ट हो गया है। विशेष (द्रव्य-गुण-पर्याय) में ज्ञान व्याप्त हुआ है;



इसलिए विशेष का कारण (पदार्थ), सामान्य में व्याप्त हुआ है – यह आगे व्यक्त करते हैं।

अब, ऐसा व्यक्त करते हैं कि इसप्रकार पदार्थ ज्ञान में वर्तते हैं –

**जदि ते ण संति अद्वा णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं ।**

**सव्वगयं वा णाणं क्हं ण णाणद्विया अद्वा ॥ 31॥**

यदि वे पदार्थ ज्ञान में न हों तो ज्ञान सर्वगत नहीं हो सकता और यदि ज्ञान सर्वगत है तो पदार्थ ज्ञानस्थित क्यों नहीं हैं? अर्थात् अवश्य हैं।

पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान में जानने में आते हैं; इसलिये पदार्थों को ज्ञान का परम्परा कारण कहा है। यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारों (द्रव्य-गुण-पर्याय) के समर्पण द्वारा ज्ञान में उतरते हुए सर्व पदार्थ, ज्ञान में प्रतिभाषित नहीं हो तो, वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जा सकता और यदि ज्ञान सर्वगत माना जाय तो फिर पदार्थ साक्षात् ज्ञान दर्पण भूमिका में, उतरे हुए बिम्ब (लोकालोक के ज्ञेयाकार) समान, अपने-अपने ज्ञेयाकारों का कारण होने से और परम्परा से प्रतिबिम्ब (ज्ञान में झलकने वाले ज्ञेयाकार) समान, ज्ञेयाकारों का कारण होने से क्यों ज्ञानस्थित निश्चित नहीं होगा? अर्थात् अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होता है।

जैसे मयूर (मोर) बिम्ब है और दर्पण में मोर दिखाई देता है, वह प्रतिबिम्ब है; वैसे ही लोकालोक के ज्ञेयाकार बिम्ब हैं और ज्ञान में जो दिखते हैं, वे ज्ञेयाकार प्रतिबिम्ब हैं। लोकालोक के पदार्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायों में साक्षात् कारण हैं। वे पदार्थ ज्ञान में जानने में आये; इसलिये वे पदार्थ परम्परा से ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों (ज्ञानाकारों) के कारण हैं। आत्मा की ज्ञान पर्याय में पदार्थ परम्परा कारण हैं; इसलिए पदार्थ अवश्य ज्ञानस्थित हैं।

जगत के प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य हैं और पदार्थ कारण हैं, उन द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा ने जाना, ज्ञान उसरूप परिणमित हुआ और उसी समय पदार्थ आत्मा में झलके तो उपचार से कह दिया कि वे पदार्थ ज्ञान में कारण हैं। उन पदार्थों को ज्ञान में परम्परा कारण कहा है, क्योंकि ज्ञान पर से नहीं जानता; किन्तु पदार्थ स्वयं ही जानने में आते हैं। एक बात और है कि इस आत्मा के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएँ भी अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से परिणमित

होती हैं; इसलिए वे अपने कार्य का कारण हैं तथा उन द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा जानता है; इसलिए पदार्थ परम्परा कारण हैं।

जैसे लकड़ी में सामान्य अंश गुण है तथा विशेष अंश व्यतिरेक (पर्याय) है। तात्पर्य यह हुआ कि लकड़ी वस्तु कारण है तथा लकड़ी के द्रव्य-गुण-पर्याय उसके कार्य हैं। जब ज्ञान की पर्याय लकड़ी के द्रव्य-गुण-पर्याय रूप कार्य को जानती है; तब कार्य में कारण का उपचार करके ज्ञान की पर्याय ने लकड़ीरूप पदार्थ को जाना – ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय ने पदार्थ के कार्य को जाना; लेकिन उस कार्य का कारण पदार्थ होने से पदार्थ को जाना – ऐसा कह दिया जाता है। ज्ञान तो अपनी शक्ति से ही पदार्थों को जानता है; लेकिन निमित्त की तरफ से कथन करने पर पदार्थों को ज्ञान में कारण कहा जाता है।

वास्तव में द्रव्य-गुण-पर्यायरूप कार्य बिम्ब है; लेकिन उनका कारण पदार्थ होने से पदार्थ को बिम्ब कहा जाता है। ज्ञान की पर्याय प्रतिबिम्ब है और प्रतिबिम्ब का कारण भेदरूप द्रव्य-गुण-पर्याय हैं और द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण पदार्थ होने से पदार्थ को ही ज्ञान का परम्परा कारण कहा है।

धन का आना अथवा जानारूप कार्य आत्मा का कार्य नहीं है। उस कार्य का कारण वह पदार्थ है; आत्मा के कारण का वह कार्य नहीं है। वस्तु में जो द्रव्य-गुण-पर्यायरूप भेद पड़ते हैं, उनका कारण सम्पूर्ण वस्तु है और उस वस्तु का भेद ही उसका कार्य है; वह आत्मा का कार्य नहीं है। ज्ञान स्वयं से सामान्यरूप द्रव्य, शक्तिरूप गुण और पर्याय अंश आदि को जानता है; किन्तु ज्ञान में भेद जानने में आते हैं; इसलिये उन भेदरूप पदार्थों को ज्ञान में परम्परा कारण कहा है।

पदार्थ ज्ञान में परम्परा कारण होने से पदार्थ ज्ञान में स्थित है – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। सम्पूर्ण विश्व के पदार्थों के स्वज्ञेयाकारों अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान में समर्पण हुआ है। यदि वे पदार्थ ज्ञान में प्रतिभाषित नहीं हों तो ज्ञान को सर्वगत नहीं माना जा सकेगा। यदि ज्ञान सभी पदार्थों को जानता है तो पदार्थ ज्ञान में आ जाते हैं; इसलिये पदार्थ ज्ञान में स्थित हैं, इसमें विरोध नहीं है। ज्ञान बराबर जानता है; इसलिये वे पदार्थ ज्ञान में आ गये हैं – ऐसा कहा जाता है।

( क्रमशः )

समयसार परिशिष्ट प्रवचन

## शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है &

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

( गतांक से आगे ..... )

आत्मा भाव्यमान भाव का आधार बने - ऐसी आत्मा की शक्ति है। ज्ञानी भावक होकर निर्मलभाव को भाता है और अज्ञानी भावक होकर विकार की भावना करता है। ज्ञानी तो स्वभाव के आधार से निर्मलभाव प्रगट करके उन्हीं के आधार से परिणमित होता है। अज्ञानी अपने आत्मा को विकार का ही आधार मानकर मात्र विकाररूप से परिणमित होता है; निर्मल पर्याय के आधाररूप अपने शुद्धस्वभाव को वह नहीं जानता; इसलिए बाह्य आधार से निर्मलता प्रगट करना चाहता है - यह उसकी बाह्य दृष्टि है। चैतन्य का आधार छोड़कर जो बाह्य में अपना आधार ढूँढ़ता है, वह भले ही महान सम्राट हो; तथापि भिखारी ही है; क्योंकि वह दूसरों से अपने ज्ञान-आनन्द की भीख मांगता है और मैं ही अपने आनन्द का आधार हूँ, अपने ज्ञान-आनन्द के लिए मुझे अन्य किसी आधार की आवश्यकता नहीं है - ऐसी स्वभावदृष्टि करनेवाला सम्यक्त्वी कदाचित् नर्क में हो; तथापि वह महान सम्राट है।

शरीर या राग आत्मा के धर्म का आधार नहीं है; क्योंकि शरीर और राग छूट जाने पर भी सम्यग्दर्शनादि बने रहते हैं; इसलिए वे कोई धर्म के आधार नहीं हैं; तथा आत्मा शरीर का या राग का आधार नहीं है, संसार का आधार भी आत्मा नहीं है; वह तो मोक्ष का ही आधार होता है - ऐसा उसका स्वभाव है।

जिसका जो आधार हो, वह उससे अभिन्न होता है; भिन्न नहीं होता। यदि वस्तु में अपना आधार होने की शक्ति न हो तथा भिन्न आधार हो तो अनवस्था दोष आ जाये; आधार की परम्परा कहीं न रुके। जैसे - कोई ऐसा कहे कि - आत्मा

का आधार यह शरीर, शरीर का आधार मकान, मकान का आधार यह जम्बूद्वीप; जम्बूद्वीप का आधार मध्यलोक; मध्यलोक का आधार लोक और लोक का आधार अलोक तो अलोक का आधार कौन होगा ? अलोक से विशाल तो कोई है ही नहीं, जिसे उसका आधार कहा जाये; इसलिए अलोक का आधार अलोक ही है, कोई भिन्न आधार नहीं है; तो फिर अलोक की भांति जगत के अन्य पदार्थों को भी निश्चय से अपना-अपना ही आधार है, पर का आधार नहीं है।

समयसार संवर अधिकार गाथा 181, 182, 183 में आकाश का उदाहरण देकर भेदज्ञान की अद्भुत बात समझाई है। वहाँ कहते हैं कि - 'जब अकेले आकाश को ही लक्ष में लेकर उसके आधार का विचार किया जाये तब आकाश को अन्य किसी द्रव्य का आधार नहीं कहा जा सकता; इसलिए कोई भिन्न आधार लक्ष में नहीं आता। एक आकाश ही आकाश में है - ऐसा भलीभांति समझ में आता है और ऐसा समझनेवाले को भी पर के साथ आधार-आधेयपना भासित नहीं होता; उसीप्रकार मात्रा ज्ञानस्वभाव को लक्ष में लेकर उसके आधार का विचार किया जाये तो ज्ञान से भिन्न अन्य किसी द्रव्य का आधार दिखाई नहीं देता; एक ज्ञान ही स्वयं अपने में ही है - ऐसा भलीभांति समझ में आता है और ऐसा समझनेवाले को अपने ज्ञानस्वभाव से भिन्न अन्य किन्हीं पदार्थों के साथ अपना आधार-आधेयपना भासित नहीं होता। ऐसा अपूर्व भेदज्ञान होने से स्वयं अपने ज्ञानस्वभाव के आधार से ज्ञानरूप ही परिणमित होता है और राग-द्वेष-मोह की उत्पत्ति नहीं होती। यह संवर होने का उपाय है।'

देखो, निरालम्बी आकाश का उदाहरण देकर आत्मा का ज्ञानस्वभाव समझाया है। अहो ! समस्त लोक निरालम्बी है। चारों ओर तथा ऊपर-नीचे अनंतानंत अलोकाकाश के मध्य में 343 घनराजूप्रमाण यह लोक शाश्वत विद्यमान है। अनंतानंत जीव-पुद्गलों से वह परिपूर्ण है। इस लोक के नीचे कोई आधार नहीं है। किसी ने इसे धारण नहीं कर रखा है; तथापि यह लोक नीचे नहीं गिर पड़ता। लोक के नीचे बिलकुल रिक्तस्थान ही है; तथापि यह लोक नीचे नहीं गिर पड़ता। ज्यों का त्यों निरालम्बीरूप से स्थित है। जिसप्रकार लोक ज्यों का त्यों निरालम्बीरूप से स्थित है; उसीप्रकार लोक के समस्त पदार्थ भी निरालम्बीरूप से अपने-अपने स्वरूप में स्थित हैं; उन्हें किसी भिन्न आधार की अपेक्षा नहीं है। अहा ! देखो तो यह वस्तुस्वभाव।

भगवान आत्मा तो अपने स्वभाव के आधार से परिपूर्ण वीतरागी निरालम्बी हो

गया है और वहाँ शरीर का स्वभाव भी निरालम्बी हो गया है। किसी भी बाह्यपदार्थ के अवलम्बन बिना भगवान आत्मा परिपूर्ण ज्ञान-आनन्दरूप से परिणमित हो रहा है। समस्त आत्माओं का ऐसा निरालम्बी स्वभाव है; किन्तु मूढ़-अज्ञानी जीवों को बाह्य अवलम्बन की मिथ्याबुद्धि दूर नहीं होती और वे आत्मा का अवलम्बन नहीं लेते; इसलिए इस अधिकरणशक्ति में आचार्यदेव ने समझाया है कि हे जीव ! स्वयं ही अपने धर्म का आधार हो - ऐसी तेरे आत्मा की शक्ति है; इसलिए तू अपने आत्मस्वभाव का ही अवलम्बन ले दूसरों के अवलम्बन की बुद्धि छोड़।

इसप्रकार यहाँ 46वीं अधिकरणशक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

#### 47. सम्बन्ध शक्ति

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी संबंधशक्ति:

स्वभावमात्रा स्वस्वामित्वमयी संबंधशक्ति आत्मा में है। यह भगवान आत्मा अपनी ज्ञानक्रिया में अनन्तशक्ति से उल्लसित हो रहा है; उसके ज्ञानमात्रा भाव में अनन्त धर्म एकसाथ परिणमित हो रहे हैं; इसलिए आत्मा अनेकान्तमूर्ति है। ऐसे अनेकान्तमूर्ति आत्मा की 47 शक्तियों का श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने अद्भुत वर्णन किया है। उनमें से 46 शक्तियों का भावपूर्ण सरस विवेचन हो चुका है; अब यह अन्तिम सम्बन्धशक्ति की चर्चा है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्दरूप जो अपना भाव है, वही आत्मा का स्व-धन है और उसी का आत्मा स्वामी है; इसके अतिरिक्त अन्य कुछ आत्मा का स्व नहीं है और आत्मा उसका स्वामी नहीं है। देखो, यह सम्बन्ध-शक्ति ! सम्बन्ध शक्ति भी आत्मा का पर के साथ संबंध नहीं बतलाती; किन्तु पर के साथ का संबंध तुड़वाकर स्व में एकता कराती है; इसप्रकार आत्मा के एकत्व-विभक्त स्वरूप को बतलाती है। सम्यक्त्वी धर्मात्मा ऐसा अनुभव करता है कि -

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।

कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे ॥

यह एक शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय सदा अरूपी आत्मा ही मैं हूँ; वही मेरा स्व है, इसके अतिरिक्त जगत में अन्य कुछ-एक परमाणु मात्रा भी मेरा नहीं है। स्वयं अपने आत्मस्वभावभावा की ओर उन्मुख होकर स्व में एकतारूप से परिणमित हुआ, वहाँ किसी भी परद्रव्य के साथ किंचित् संबंध भासित नहीं होता। ( क्रमशः )

## ज्ञान गौणी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

**प्रश्न :** परद्रव्य के जानने की तरफ परणति जाये अर्थात् उपयोग बाह्य में भटके, उस समय वीतरागता बनी रहती है अथवा नहीं ?

**उत्तर :** स्वाश्रय से जितनी वीतराग परणति हुई है, उतनी वीतरागता तो परज्ञेय की तरफ लक्ष्य जाने के समय टिकी रहती है; परन्तु साधक को परज्ञेय की तरफ उपयोग के समय पूर्ण वीतरागता नहीं है अर्थात् राग और विकल्प है; क्योंकि परज्ञेय की ओर उपयोग और उससमय सम्पूर्ण वीतरागता हो - ऐसा नहीं बन सकता। वहाँ राग का अवश्य सद्भाव है; परन्तु उस भूमिका में जितनी वीतरागता हो चुकी है, उतनी तो हर समय टिकी रहती है। जैसे चतुर्थ गुणस्थान में परलक्ष्यी उपयोग के समय भी अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष का तो अभाव ही है; उसीप्रकार छठे गुणस्थान में परलक्ष्य के समय भी तीन कषाय का अभाव होने से तत्संबन्धी राग-द्वेष भी नहीं है अर्थात् इतनी वीतरागता तो हर समय विद्यमान ही रहती है। केवली भगवान पर को भी जानते हैं; उन्हें अपना उपयोग पर में लगाना नहीं पड़ता। उनका उपयोग तो स्व में ही लीन है।

**प्रश्न :** श्रद्धान के दोष और चारित्र के दोष में क्या अंतर है ?

**उत्तर :** श्रद्धान के दोष और चारित्र के दोष में महान् अन्तर है। सम्यग्दृष्टि दो भाई युद्ध करें, जीवों की हिंसा हो; तथापि इस शरीर की क्रिया का और राग का कर्ता उनमें से एक भी नहीं, दोनों ज्ञाता ही हैं और मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी एकेन्द्रिय जीव का भी घात करे नहीं; तथापि वह काया और कषाय में एकत्वबुद्धिवाला होने से कर्ता है, षटकाय का घातक है। अहाहा ! चारित्र के दोष की अल्पता इतनी कि दो भाई लड़ें तो भी मोक्ष जावें और श्रद्धान के दोष की महानता इतनी कि विपरीत परिणामन के फल में नर्क निगोद जावें। मूल आत्मदर्शन बिना चाहे जितनी साधुपने की क्रिया करे; किन्तु सभी व्यर्थ है। छह माह के उपवास करे, त्याग करे, फिर भी आत्मज्ञान बिना सब शून्य है, रण में पोक समान है। भाई ! प्रभु का मार्ग अत्यन्त निराला है, इसके समझने में बहुत प्रयत्न चाहिए।

**प्रश्न :** श्रद्धा के दोष और चारित्र के दोष के फलों में क्या अन्तर है?

**उत्तर :** जिनेन्द्रकथित वस्तुस्वरूप की श्रद्धा से जो भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति नहीं होती। चारित्र से जो भ्रष्ट हो गया है, उसकी मुक्ति हो जाती है। इसका कारण यह है कि उसे जो चारित्र सम्बन्धी दोष है, उसका उसे बराबर ध्यान है; अतः वह उसका अभाव करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो जीव भगवान के द्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूप की श्रद्धा से भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति नहीं होती। चारित्र दोष के सद्भाव में भी किसी सम्यग्दृष्टि को तीर्थकर गोत्र का बन्ध प्रतिसमय हो रहा है। यह सम्यग्दृष्टि निकट भविष्य में ही चारित्र का दोष टालकर मोक्षलक्ष्मी का स्वामी होगा।

**प्रश्न :** जिनशासन और जैनधर्म किसे कहते हैं?

**उत्तर :** जिस श्रुतज्ञान की वीतरागी पर्याय में आत्मा अबद्धस्पृष्ट स्वरूप अनुभव में आवे, उस पर्याय को जिनशासन कहते हैं। जिसमें विकार, अपूर्णता या भेद आवे; उस पर्याय को जिनशासन नहीं कहते। पाँचभाव स्वरूप होने पर भी एकरूप आत्मा है, वह जिसके अनुभव में आवे, उसको वीतरागी जैनधर्म कहते हैं। वीतरागी पर्याय प्रकट होती है, वीतरागी द्रव्य का आश्रय है; तथापि कर्त्तापना उस वीतरागी द्रव्य का नहीं है। वीतरागी पर्याय को वीतरागी द्रव्य का आश्रय आया; इसलिए उस पर्याय को पराधीन मत मान लेना। वह वीतरागी पर्याय षट्कारक से स्वतंत्र कर्त्तारूप में होकर प्रकट हुई है। अपनी धर्म पर्याय है, उसका कर्त्ता भी द्रव्य - ध्रुववस्तु उपचार से है। अहाहा ! ऐसी बातें वीतराग की हैं। ये तो अन्दर से आती हैं, भगवान के पास से आती हैं, यह अनन्त केवलियों की बात है।

**प्रश्न :** साधक की अन्तरंग दशा कैसी होती है?

**उत्तर :** साधक जीव को एक विकल्प से जो पुण्य बंधता है, वह पुण्य भी जगत को विस्मय उत्पन्न करता है, तो फिर उसकी निर्विकल्प साधक भावना की तो बात ही क्या? अहा ! साधक भाव के एक अंश की ही ऐसी अचिन्त्य महिमा है कि तीर्थकर प्रकृति का पुण्य भी उसको नहीं पहुँच सकता। तीर्थकर प्रकृति तो विभाव का फल है और साधक भाव है स्वभाव का फल - दोनों की जाति भिन्न है। साधक को चैतन्य की साधना के लिए जगत में सब कुछ अनुकूल है, उसको कहीं प्रतिकूलता है ही नहीं; क्योंकि उसकी साधना निजात्मा के आधार से है, बाहर के आधार से नहीं; साधक तो प्रतिकूलता के प्रसंग को भी धर्मभावना की तीव्रता का तथा जिनभक्ति - आत्मसाधना आदि की उत्कृष्टता का कारण बना लेता है।

**समाचार दर्शन -**

## शिलान्यास सानन्द सम्पन्न

**कोटा :** निर्माणाधीन श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन मुमुक्षु आश्रम की भूमि पर श्री महावीर जिनालय, स्वाध्याय भवन, मानस्तंभ, मुनिसुव्रत कूट, औषधालय एवं अतिथिभवन का शिलान्यास किया गया।

इस अवसर पर दिनांक 14 व 15 फरवरी को दो दिवसीय कार्यक्रम रखा गया, जिसमें प्रथम दिन सम्मेलन शिखर विधान के पश्चात् विश्वविख्यात तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के 47 शक्तियों पर मार्मिक प्रवचन हुए। दोपहर में आध्यात्म तलस्पर्शी स्थानीय विद्वान बाबू जुगल किशोरजी 'युगल' कोटा के प्रवचन तथा सायं पहला प्रवचन पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन का एवं दूसरा प्रवचन डॉ. भारिल्ल का हुआ। दूसरे दिन शाम को एक प्रवचन बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद का तथा डॉ. भारिल्ल का हुआ। इसके अतिरिक्त वहाँ पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर, पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री कोटा आदि विद्वान भी वहाँ पर उपस्थित थे।

अन्तिम दिन भूमिशुद्धि तथा शिलान्यास सभा का उद्घाटन श्रीमान् पदमचन्द प्रेमचन्द बजाज परिवार ने किया। शिलान्यास सभा के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित डॉ. भारिल्ल का प्रसिद्ध प्रवचन करोड़पति रिक्से बाला उदाहरण के माध्यम से 'मैं स्वयं भगवान हूँ' पर हुआ। सभा की अध्यक्षता बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' ने की।

विधि-विधान के कार्य बाल ब्र. अभिनन्दनकुमारजी खनियांधाना तथा सहयोगी पण्डित अनिलकुमारजी 'धवल', एवं पण्डित विपिनकुमारजी शास्त्री ने सम्पन्न कराये।

समस्त कार्यक्रम का निर्देशन ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री एवं डॉ. मानमल जैन ने किया।

## मुंबई में धर्म-प्रभावना

**मुंबई :** निजी कार्य से पहुँचे ब्र. यशपालजी जयपुर के सीमंधर जिनालय में 22 एवं 23 फरवरी को समयसार गाथा 5 के माध्यम से मुनि के स्वरूप के संबंध में दो प्रवचन हुये। मुमुक्षु समाज के विशेष आग्रह पर तीन दिन तत्त्वचर्चा भी हुई, जिसमें लोगों ने करणानुयोग संबंधी चर्चाओं के साथ छठवे व सातवे गुणस्थान पर अनेक शंकायें व्यक्त की जिनका समाधान अच्छी तरह से किया गया।

विशेष बात यह रही कि इस चर्चा में स्वामीजी के कथन के साथ करणानुयोग के मूल विषय का प्रतिपादन किया गया। समाज द्वारा गुणस्थान समझने की इच्छा से अगले माह में 11 से 18 मार्च में आने वाली अष्टान्हिका पर ब्र. यशपालजी को आमंत्रित किया और उन्होंने समाज की रुचि को देखकर स्वीकृति प्रदान की।



## शिलान्यास एवं उद्घाटन सम्पन्न

**दिल्ली :** आत्मसाधना केन्द्र के तत्त्वावधान में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट द्वारा 13 फरवरी 2003 को रत्नत्रय जिनालय का शिलान्यास श्री अजितप्रसादजी ने किया तथा इसका सम्पूर्ण खर्च भी वे ही उठायेंगे। भवन के स्टेज का उद्घाटन श्री चक्रेश जैन बिजली वालों ने एवं आत्मार्थी औषधालय का उद्घाटन श्री प्रकाशचंद दिनेशकुमार जैन ने किया गया।

इस अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त महामहोपाध्याय डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर के 47 शक्तियों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

कार्यक्रम में पण्डित प्रकाशचन्दजी हितैषी दिल्ली, पण्डित राकेशजी शास्त्री लोनी एवं पण्डित संदीपजी शास्त्री की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित गणतन्त्र शास्त्री ने सम्पन्न कराये। कार्यक्रम श्री विमलकुमारजी नीरू केमिकल्स एवं आदीशकुमारजी का भी सराहनीय **कर्मिकरण एवं महाराष्ट्र में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना**

श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के भूतपूर्व छात्र पण्डित राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री यलिमुन्नोली (कर्नाटक) द्वारा समयसार, छहढाला, मोक्षमार्ग-प्रकाशक आदि विषयों पर प्रवचन एवं अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ विगत 2 माह लगातार धर्मप्रभावना हुई।

कर्नाटक में यलिमुन्नोली, कोन्नूर, तेलेकुण्णी, हावेरी, हुबली, दावणगेरे, तुमकूर, हासन, बैंगलोर, मैसूर, मंडया, कनकगिरि, चामराजनगर, सरगुरु, अडगुरु, होसदुर्ग, सालिग्राम, निहूर, बेललूर, होलेनरसिपुरा, कार्कल, औराद्र, बेलगांव एवं बागेवाडी।

महाराष्ट्र में मिरज, कुप्पवाड, दानोली, कौटेसार, हिंगनगांव एवं सिरोल - इसप्रकार करीब 30 स्थानों पर महाविद्यालय के विद्यार्थी द्वारा पहली बार अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। वहाँ के सभी लोगों ने टोडरमल स्मारक की एवं पूज्य गुरुदेवश्री की बहुत प्रशंसा की और आगामी काल में शिविर लगाने का आग्रह व्यक्त किया।

## साहू रमेशचंदजी जैन 'मास कम्यूनिकेशन' के अध्यक्ष

सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य नेता तथा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्, कुन्दकुन्द भारती न्यास आदि संस्थाओं के अध्यक्ष, भारतीय ज्ञानपीठ एवं साहू जैन ट्रस्ट के प्रबंध न्यासी साहू श्री रमेशचंदजी जैन को विश्वस्तरीय संचार माध्यम एवं सूचना प्रौद्योगिकी के प्रमुख संस्थान **मास कम्यूनिकेशन** का मानद अध्यक्ष मनोनीत किया गया। उनका कार्यकाल आगामी दो वर्ष तक रहेगा।

साहूजी को यह गौरव प्राप्त होने पर देशभर के विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधिओं एवं समाज के गणमान्य लोगों ने हार्दिक बधाई और अभिनन्दन की भावनाएं प्रेषित की हैं। कुन्दकुन्द भारती प्रांगण में भी दक्षिण भारत जैन सभा के शताब्दि समारोह में इस निमित्त साहूजी का विशेष अभिनन्दन किया गया। टोडरमल स्मारक परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई।

30● अप्रैल, 2003 // (9)

## पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

### 37 वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, टोडरमल स्मारक, जयपुर में

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की प्रेरणा से निर्मित पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित प्रशिक्षण शिविरों की शृंखला में 37 वाँ श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष दिनांक 11 मई से 28 मई 2003 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में ही होना निश्चित हुआ है।

**इस शिविर में मुख्यरूप से धार्मिक अध्ययन करानेवाले बन्धुओं (अध्यापकों) एवं मुमुक्षु भाईयों को शिक्षण-विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।**

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, ब्र. यशपालजी जैन बेलगांव एवं पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर आदि तो रहेंगे ही साथ ही डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित हरकचन्दजी बिलाला अकोला, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन से भी सम्पर्क किया जा रहा है। इनके पधारने की पूरी-पूरी संभावना है। इनके अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक विद्वान अध्यापक भी पधारेंगे।

शिविर ब्र.जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में संचालित होगा।

इस अवसर पर समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ तो प्राप्त होगा ही, साथ में बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की भी व्यवस्था रहेगी।

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की प्रवेश प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दिनांक 10 मई को दोपहर 2 बजे जयपुर में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करना आवश्यक होगा। अतः प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी तैयारी करके आवें।

ध्यान रहे, प्रवेशिका प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश दिया जायेगा, जो बालबोध प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना निम्नांकित पते पर अवश्य भेज दें; ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

शिविर के पत्र-व्यवहार का पता -

### डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

महामंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

फोन - (0141) 2705581, 2707458 फैक्स - 2704127